Chapter 6

अध्याय : ६

उपसंहार :

हिन्दी पत्र-साहित्य की उपलब्धियाँ ,

सीमाएं और सम्भावनाएं

उपसंहार

हिन्दी पत्र-साहित्य की उपलब्धियां, सीमाएं और सम्भावनाएं

पिछले अध्यायों के विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी का पत्र-साहित्य इतना क्षीण-हीन और दुर्बल-दरिद्र नहीं है जितना कि समझा जाता है । आज हिन्दी में पत्र-साहित्य की एक सुनिश्चित परम्परा स्थापित हो गयी है । प्राचीनकाल से लगाकर अबतक का लिखा हुआ प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आ चुका है । अत: अब इसे एक पृथक् विधा मानने में कोई संकोच नहीं किया जाना चाहिए ।

पत्र-लेखन की कला यथेष्ट रूप में पुरानी है । प्राचीनकाल में पद्य और गद्य में विशुद्ध संस्कृत शैली में पत्र लिखे जाते थे । मीरा और तुलसी तथा पृथ्वीराज राठौर और महाराणा प्रताप का पत्र-व्यवहार लोक-विश्रुत है । यद्यपि प्राचीन-अर्वाचीन काल के अनेक कवियों ने पद्य में भी सुन्दर पत्र लिखे हैं, किन्तु पत्र-लेखन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम गद्य ही है । सबसे प्राचीन पत्र राजस्थानी-गद्य में मिलते हैं । महाराजा छत्रसाल द्वारा बुन्देली में लिखे गये पत्रों में खड़ी बोली गद्य की अपूर्व छटा देखने को मिलती है । यद्यपि प्राचीनकालीन पत्रों में कहीं-कहीं लालित्य और माधुर्य का पुट भी मिल जाता है, किन्तु अधिकतर पत्र राज-काज से सम्बन्धित और व्यावहारिक स्तर के हैं ।

पत्रों को साहित्य का अंग मानने तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति हमारे यहां पश्चिम से आई है । नवजागरणकाल में आधुनिक ढंग की संचार-सुविधा और डाक-सेवा का आरम्भ होने से पत्रों के आदान-प्रदान में मध्यस्थ की आवश्यकता न रही और पत्रने आत्मीय वार्तालाप का रूप धारण कर लिया । नवजागरण के अग्रदूत और आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य के जैसे अन्य क्षेत्रों में नवीनता की सृष्टि की वैसे ही पत्रों के अन्तर्बाह्य रूप में भी उन्होंने अपनी सहज भावुकता तथा कलात्मकता का

समावेश किया । उन्होंने नये चाल के पत्र चलाये और "प्रशस्ति-संग्रह अथवा पत्र-बोध" नामक पुस्तक लिखकर पत्र-लेखन कला का नया आदर्श प्रस्तुत किया । यद्यपि उन्होंने स्वयं किसी पत्र-संग्रह सम्पादन नहीं किया, किन्तु अनेक साहित्यिक मित्रों को रोचक शैली में पत्र लिखकर नये-नये विषयों की प्रेरणा दी ।

दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि पत्र पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का आरम्भ भारतेन्दु-युग में ही हो गया था, परन्तु मनीषियों के व्यक्तिगत पत्रों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का शुभारम्भ द्विवेदी-युग में स्व० महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने किया । उन्होंने "आर्यभाषा" हिन्दी के उन्नायक तथा आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से सम्बन्धित पत्रों का संग्रह प्रकाशित कर हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात किया । पं० भगवद्दत्त तथा पं० चमूपति ने इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में अनन्य योग दिया । हिन्दी साहित्यकारों के व्यक्तिगत पत्रों को संगृहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने की परम्परा का आरम्भ सन् १९५४ ई० में हुआ । श्री बैजनाथसिंह "विनोद" के सम्पादकत्व में प्रकाशित "द्विवेदी पत्रावली" इस परम्परा की प्रथम कड़ी है । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, बाबू वृन्दावनदास, डा० हरिवंशराय बच्चन आदि ने इस परम्परा के विकास में अपूर्व सहयोग दिया है । व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संग्रहों के अतिरिक्त स्मृति-ग्रंथों, अभिनन्दन-ग्रंथों, जीवनी-ग्रंथों, शोध-प्रबन्धों आदि में भी महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र देने की परम्परा चल पड़ी है । यात्रा-सम्बन्धी पत्र-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में प्रकाशित हो चुका है । इस प्रकार आज हिन्दी में पत्र-साहित्य की एक समृद्ध परम्परा विद्यमान है ।

यद्यपि साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों ने अपने पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, किन्तु उनके कलात्मक एवं महिमामंडित व्यक्तित्व के कारण उनके पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं । विभिन्न प्रकार के पत्रों में व्यक्तित्व या आत्म-प्रकाशन का अंश घटता-बढ़ता रहता है । इस दृष्टि से सब -

साहित्यिकों के सभी पत्र साहित्यिक नहीं होते, परन्तु जैसा कि बाबू गुलाबराय ने कहा है - " कुछ कुशल साहित्यिकों में यह विशेषता होती है कि वे जो बात कहना चाहते हैं उसको वे थोड़े-से-थोड़े शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देते हैं । उनके घरेलू या व्यावहारिकपत्रों में भी साहित्य का आनन्द आ जाता है ।"[1] यही बात प्रकारान्तर से डा० रामविलास शर्मा ने महाकवि "निराला" के पत्र-साहित्य की चर्चा के प्रसंग में कही है । उन्हीं के शब्दों में -

" - - - - साहित्यकारों के पत्र-जीवन चरित के सन्दर्भ से अलग हटकर- अपने आप में पक्का माल हैं, इसमें भी कोई सन्देह नहीं । सभी पत्र इस कोटि के नहीं है फिर भी काफी ऐसे हैं, और बहुतों में काफी अंश ऐसे हैं; कि उन्हें श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में रखना उचित होगा ।"[2]

विषय और शैली की दृष्टि से हिन्दी का पत्र-साहित्य अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है । इसमें इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य आदि अनेक विषयों की चर्चा मिलती है । भाव और भाषा-सम्बन्धी जितनी शैलियां निर्धारित की गयी है, प्राय: वे सभी शैलियां पत्र-साहित्य में मिल जाती हैं ।

पत्र-साहित्य का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि उसके द्वारा हमें लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चल जाता है । जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि विधाओं में श्रद्धातिरेक के कारण महान् व्यक्तियों की दुर्बलताएं विस्मरण के गर्त में लुप्त हो जाती हैं, किन्तु उनके साहित्यको उन दुर्बलताओं को समझे बिना भली भांति हृदयंगम नहीं किया जा सकता । अत: किसी साहित्यकार की रचनाओं को सम्यक् रूप से समझने के लिए उसके पत्र अत्यन्त उपयोगी होते हैं । पत्र-साहित्य में लेखक के व्यक्तित्व के सच्चे सम्प्रेषण से उसके और पाठक के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ।

१" काव्य के रूप" (१९५४), पृ० १६१ ।

२"निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), भूमिका, पृ० १ ।

जीवन-चरित के सन्दर्भ में पत्र-साहित्य दोहरी भूमिका निभाता है। एक ओर जहां पत्रों से जीवनी-लेखन में अन्यतम सहायता मिलती है, वहां दूसरी ओर लिखी गयी जीवनियों को पत्रों के प्रकाश में देखा-परखा भी जा सकता है। रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर की ओर से प्रकाशित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गयी स्वामी दयानन्द सरस्वती की जीवनियों को स्वामीजी के पत्रों के प्रकाश में देखने-परखने का सुन्दर और स्तुत्य प्रयास किया गया है।[1]

कभी-कभी साहित्यकार स्वयं भी अपनी रचनाओं तथा शैली-गत रहस्यों की व्याख्या अपने पत्रों में प्रस्तुत करता है। कविवर सुमित्रा-नन्दन पन्त ने, १६-४-१९६४ से २२-५-१९६४ तक की अवधि में बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में अपने "लोकायतन" शीर्षक महाकाव्य की जो व्याख्या प्रस्तुत की है[2], वह विवेचक और पाठक दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि रचनाकार के निजी मंतव्य भी, अन्य सुप्रतिष्ठित मंतव्यों के समान अपना पृथक् महत्व रखते हैं।

साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों में समकालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्र भी अंकित होता है। हिन्दी पत्र-साहित्य में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियों, प्रवृत्तियों तथा घटनाओं के जो प्रामाणिक और रोचक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से "किसी देश या समाज के विविधवर्णी इतिहास पर यथार्थ प्रकाश डालने के लिए पत्रसामग्री एक बहुत बड़ा आलोक केन्द्र है।"[3] इस प्रकार पत्र-साहित्य की अनेक उपलब्धियां हैं।

---

१ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), भूमिका, पृ० ११।

२ देखिए:- "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ० ११० - १५५।

३ "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग (सं० २०२७ वि०), पृ० ५०७।

पत्र-साहित्य की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं । स्वरूपगत सीमाओं पर विचार करें तो प्रतीत होता है कि पत्र में निश्छलता, स्वाभाविकता, सरलता, संक्षिप्तता, आत्मीयता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है । इनके अभाव में पत्र पत्र न रहकर निबन्ध, आलोचना या संस्मरण का रूप धारण कर लेता है । केवल सम्बोधन और अन्त में "भवदीय" शब्द लिख देने से पत्र का बाहरी ढांचा तो निर्मित हो जायेगा, किन्तु उसमें भावों का स्पन्दन और हृदय की धड़कनें नहीं सुनाई देंगी । हिन्दी में प्रकाशित उपदेशात्मक, यात्रा-विषयक आदि पत्रों में कई स्थानों पर कृत्रिमता का आभास होता है ।

दूसरी ओर कुछ पत्र अपनी सीमा से अधिक व्यक्तिगत जान पड़ते हैं । "नर्मदा" के नवीन-अंक (१९६३) में प्रकाशित पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम नवीनजी के कुछ पत्र इसी प्रकार के पत्र हैं । "कवियों में सौम्य संत", "पंत के सौ पत्र-बच्चन के नाम" तथा "पंत के दो सौ पत्र-बच्चन के नाम" शीर्षक पुस्तकों में संकलित कुछ पत्र भी सीमा के अधिक व्यक्तिगत हो गये हैं । अत: पत्रों के चयन में सतर्कता की आवश्यकता है ।

पत्र-साहित्य की एक बहुत बड़ी सीमा यह है कि जब तक गये पत्र को न पढ़ा जाय तब तक आये उत्तर का अर्थ पूरीतरह से नहीं खुल पाता है । अत: पत्रों को पढ़ते समय पाठक को कल्पना से काफी काम लेना पड़ता है । यद्यपि कुछ पत्र-संग्रहों में सन्दर्भ-स्पष्टीकरण के लिए पाद-टिप्पणियां दी जाती हैं, किन्तु पत्र और पत्र के उत्तर साथ-साथ पढ़ने से और भी अधिक आनन्द की अनुभूति होती है । हिन्दी में "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" को छोड़कर दूसरा कोई पत्र-संग्रह देखने में नहीं आया जिसमें किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा प्रेषित पत्रों के साथ उसे प्राप्त पत्रों को भी संकलित किया गया हो । मदनगोपाल और अमृतराय द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री" भाग-२ के प्रारम्भ में प्रेमचन्द जी और जैनेन्द्रकुमार का पत्र-व्यवहार दिया गया है, किन्तु वह बहुत सीमित है । हिन्दी में इस प्रकार के पत्र-संग्रहों की विशेष आवश्यकता है ।

पत्र-साहित्य के संग्रह-संकलन के रास्ते में भी अनेक कठिनाइयां

हैं । इस सम्बन्ध में "शरत् पत्रावली" अनुवादकर्त्ता श्री महादेव साहा ने लिखा है कि - "पत्र-लेखक अगर पत्रों की नकल अपने पास नहीं रख छोड़ता है या जिसको पत्र लिखा गया है, वे उन्हें संभालकर नहीं रखते तो यह काम नहीं किया जा सकता । इन्हीं कारणों से कितने ही महान् साहित्यकारों तथा दूसरों के पत्रों का संकलन बहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है ।"[1]

उर्दू, बंगला, मराठी आदि भाषाओं में पत्र-साहित्य की समृद्धि में प्रारम्भ से ही सतर्कता बरती गयी है । हिन्दी में पत्रों की सुरक्षा के प्रति उदासीनता के कारण स्वाधीनता के पूर्व किसी साहित्यकार का पत्र-संग्रह प्रकाशित नहीं हो पाया । स्वाधीनता के बाद भी अनेक अनमोल पत्र नष्ट हो गये । राष्ट्रकवि "दिनकर" के पत्रों के विषय में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है-

"किसी महान् साहित्यिक की परलोक यात्रा के समय हिन्दी-जगत् बड़े उच्च स्वरों में शोकोद्गार प्रकट करता है और लम्बे-चौड़े प्रस्ताव भी पास करता है, पर जब उसकी कीर्ति रक्षा के लिए ठोस काम करने की नौबत आती है, तब कोई नज़र नहीं आते । सन् २००० के हिन्दी साहित्य-अन्वेषक को शायद लिखना पड़ेगा कि "देव ने कृपाकर हिन्दी-जगत् को एक प्रतिभाशाली कवि दिया था, पर वह उनके पत्रों की रक्षा भी न कर सका, जिन्हें पढ़ते हुए हम आज उनके हृदय का स्पन्दन सुन सकते ।"[2]

इस प्रकार पत्र-साहित्य की समृद्धि में साहित्यकारों एवं महापुरुषों के पत्रों की सम्भाल-सुरक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है । इस सम्बन्ध में आचार्य शिवपूजन सहाय का यह सुझाव द्रष्टव्य है- "हमारे देश के विद्यार्थियों और नवयुवकों में डाक-टिकट, फोटो आदि संग्रह करने का शौक तो है, पर साहित्यिकों की चिट्ठियों के संग्रह का शौक शायद ही किसी को हो । - - - - यह भी एक प्रकार की साहित्य-सेवा ही होगी ।"[3]

---

१ "शरत् पत्रावली" (१९६९), भूमिका, पृ० ५ ।

२ "राष्ट्रकवि दिनकर जी : अपने पत्रों के प्रकाश में (लेख), "ज्ञानतरंगिनी" श्रद्धांजलि-अंक, १९७६, पृ० ८ ।

३ "शिवपूजन रचनावली" खण्ड-४ (१९५९), पृ० ५५७ ।

जिन लोगों के पास मूल्यवान् पत्र-सामग्री सुरक्षित हो उनको चाहिए कि वे या तो उन पत्रों को किसी साहित्यिक संस्था को दे दें या पत्र-साहित्य के संग्रहकर्ताओं को भेज दें । परन्तु बहुत-से लोग अपने पास सुरक्षित पत्रों को न स्वयं प्रकाशित करते हैं न दूसरों को प्रकाशनार्थ भेजते हैं । परिणामस्वरूप कालान्तर में वह मूल्यवान् सामग्री दीमक के लिए भोजन-सामग्री बन जाती है । जब स्वर्गीय साहित्यकारों के स्वजन-परिजन पत्र-संग्रहकर्ता को सहयोग नहीं देते तब तो पत्र-साहित्य के प्रेमियों को और अधिक दु:ख होता है । बाबू वृन्दावनदास ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के आदेश से डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों को प्रकाशित करने के लिए डा० अग्रवाल के परिजनों को अनेक बार लिखा परन्तु उनकी ओर से कोई उत्तर ही न मिला ।[१]

इसी प्रकार पत्रों के प्रकाशन में भी अनेक कठिनाइयां हैं । इसके लिए पत्र-लेखक की अनुमति आवश्यक है । पत्रों को हूबहू प्रकाशित कर दिया जाय या काट-छांट कर, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० हरिवंशराय बच्चन आदि साहित्यकार पत्रों को हूबहू प्रकाशित करने के पक्ष में हैं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वर्गीय "नवीन" जी के फक्कड़पन से भरे पत्रों को "नर्मदा" के नवीन-अंक में ज्यों के त्यों प्रकाशित किये हैं । बच्चन जी ने भी अपने नाम आये पन्तजी के पत्रों को बिना किसी काट-छांट, संशोधन, परिवर्तन के प्रकाशित किये हैं । पन्तजी अपने पत्रों से कुछ अंशों को निकाल देना चाहते थे, किन्तु बच्चन जी उनसे सहमत नहीं हुए । परिणाम स्वरूप पन्त जी ने उन पर अदालत में मुकद्दमा दायर कर दिया था । पत्र-साहित्य के प्रकाशन में इस घटना से कुछ रुकावट आ गयी और पत्रों में सेंसरशिप की प्रवृत्ति भी आरम्भ हो गयी । राष्ट्रकवि "दिनकर" ने अपने २८-८-१९७१ के पत्र में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा :-

" आपके बहुत से पत्र मेरे पास हैं । और मित्रों के भी हैं । उन्हें प्रकाशित करने की इच्छा होती है । मगर आपने सुना होगा कि पन्त जी ने बच्चन पर मुकदमा कर दिया है कि बच्चन ने उनके पत्र क्यों

---

१ " बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ० २२७ ।

छाप दिये ।"[1]

पत्रों के प्रकाशन के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय का यह मत विचारणीय है -" लेखक के अतिरिक्त जिन पत्रों में दूसरे के रहस्यों का उद्घाटन हो और जिनके कारण उनको समाज में लज्जित होना पड़े , छापना उचित नहीं है । लेखक के रहस्यों के उद्घाटन करनेवाले पत्रों को उसके जीवन-काल में न छापकर उसकी मृत्यु के पश्चात् छाप सकते हैं , विशेषकर जब कि लेखक के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता हो या उनमें साहित्यकता हो ।"[2]

इस प्रकार पत्र-साहित्य के प्रकाशन में बड़ी सतर्कता रखने की आवश्यकता है । प्रकाशित पत्रों की मूल प्रतियां कहीं ऐसी जगह सुरक्षित करा देनी चाहिए जहां कोई देखना चाहे , तो आसानी से देख सकें ।

इसके अतिरिक्त प्रकाशन-क्षेत्र की संकीर्णता के कारण भी पत्र-साहित्य के विकास में कुछ शिथिलता प्रारम्भिककाल में आ गयी थी । आज भी हमारे यहां पत्र-संग्रहों के प्रकाशन का वह आदर्श स्थापित नहीं हो पाया है जो पाश्चात्य-जगत् में है ।

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी पत्र-साहित्य की क्षीण स्थिति का एक अन्य कारण पाठकों का निश्चैतन्य भी है । पश्चिमी देशों में साहित्यकारों और महापुरुषों के पत्र उनकी कृतियों के समान बड़े चाव से पढ़े जाते हैं, किन्तु हिन्दी में इस ओर प्रारम्भिक काल में पाठकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया । परिणाम स्वरूप मूर्धन्य साहित्यकारों के पत्रों के संकलन उनके प्रशंसकों एवं प्रकाशकों द्वारा अपेक्षित संख्या में नहीं निकल पाये ।

१" दिनकर जी के अनमोल पत्र", " ग्राम्या ,
जून १९७६ ।

२"काव्य के रूप " (१९५४) ,
पृ० २६२ ।

पत्र-साहित्य के संग्रह, संकलन और प्रकाशन में अनेक बाधाएं होते हुए भी पिछले तीन दशकों में अनेक महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह प्रकाश में आये हैं। कुछ प्रकाशक भी अब पत्र-साहित्य के प्रकाशन में रुचि ले रहे हैं। दिवंगत साहित्यकारों के परिजन भी इस क्षेत्र में अब सचेष्ट हो रहे हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय के पत्रों को एकत्र करने के लिए उनके पुत्र आनन्दमूर्ति ने 'साहित्य' (त्रै०) के शिवपूजन-स्मृति अंक में सुधी साहित्यकारों तथा सम्पादकों के नाम एक निवेदन प्रकाशित किया था।[1] इसी प्रकार स्व० गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के पत्रों को एकत्रित करने के लिए उनके पुत्र रमेश मुक्तिबोध ने 'राष्ट्रवाणी' में एक निवेदन प्रकाशित किया था।[2]

बाबू वृन्दावनदास ने डा० लल्लन मिश्र को प्रेषित २०-४-१९७२ के पत्र में सूचना दी है कि वे पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों का दूसरा संग्रह छापने का विचार कर रहे हैं।[3] इसी प्रकार श्री हरगोविन्द गुप्त के नाम लिखित ७-१-१९७४ के पत्र में उन्होंने गुप्त बन्धुओं के पत्रों को प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की है।[4] श्री सूरज प्रसाद मिश्र के नाम लिखे उनके २-९-१९७५ के पत्र में राहुल जी के पत्र-संकलन की सूचना मिलती है।[5] इस प्रकार भविष्य में अनेक बहुमूल्य पत्र-संग्रह के प्रकाशित होने की सम्भावना है।

---

१ साहित्य (त्रै०), शिवपूजन-स्मृति-अंक, १९६४, अंतिम पृष्ठ।

२ राष्ट्रवाणी, मुक्तिबोध श्रद्धांजलि-अंक, जनवरी-फरवरी-१९६५, पृ० ३३५

३ 'बाबू वृन्दावनदास के पत्र' (१९७८), पृ० ३५६।

४ 'मैं कुछ इस प्रकार सोचता हूं कि स्वर्गीय मैथिलीशरण जी गुप्त और सियारामशरण जी गुप्त के पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित कर दिया जाय'
- वही-, पृ० ३८७।

५ 'राहुल जी के पत्रों का संग्रह आप कष्ट झेलकर भी कर रहे हैं, यह आपकी सच्ची हिन्दी-सेवा समझी जायगी।'
- वही-, पृ० ३८०।

अभी हाल ही में डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल, डा० (श्रीमती)-शारदा शर्मा तथा डा० कमलसिंह के सम्पादकत्व में डा० अम्बाप्रसाद "सुमन" के मूल्यवान् पत्रों का एक बृहत् संग्रह "संस्कृति, साहित्य और भाषा" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इसमें डा० "सुमन" जी द्वारा संस्कृति, साहित्य और भाषा के विषय में सन् १९५५ से १९७८ ई० तक समय-समय पर अपने मित्रों और शिष्यों को लिखे गये बहुमूल्य पत्र संकलित हैं । यह ग्रंथ हिन्दी पत्र-साहित्य में एक महत्वपूर्ण एवं अभिनव योगदान है ।

हिन्दी का विपुल पत्र-साहित्य पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है । सहस्रों पत्रों को एकत्र करके वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित-प्रकाशित किया जाय तो हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन में बड़ी प्रामाणिकता का संचार हो सकता है ।

यदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों की सहायता से पुराने पत्रों की खोज एवं सुरक्षा का आन्दोलन चलाया जाय तो साहित्य-जगत् की अनेक पुरानी घटनाएं प्रकाश में आ सकती है और अनेक अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन हो सकता है ।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में पत्र-साहित्य का जो विशाल भण्डार भरा है, उसमें शोधकर्ताओं के लिए मूल्यवान् सामग्री संचित है । अत: इन पत्रों के प्रकाशन में शोध-संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट होना चाहिए । पत्र-साहित्य के संकलन-सम्पादन का कार्य अबतक प्राय: व्यक्तिगत तौर पर ही होता रहा है, किन्तु अब यह कार्य बड़ी संस्थाओं तथा सरकार द्वारा होना चाहिए । यदि विशाल हिन्दी-क्षेत्र से महत्वपूर्ण पत्रों का संग्रह किया जाय तो बिखरी हुई विपुल सामग्री एकत्र हो सकती है । इस कार्य के पूरा होने से हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा उपकार होगा ।

संक्षेप में पिछले तीन दशकों में हिन्दी-जगत् में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने की चेतना में जो उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, इससे भविष्य में पत्र-साहित्य का अधिक विकास होने की सम्भावना दीख रही है ।